

डिजिटल युग में विज्ञापनों के माध्यम से भारतीय भाषाओं का साहचर्य तथा संप्रेषण की विविधता

- शिवम सिंह

सारांश-

आज के डिजिटल युग में, जनमाध्यमों तथा विज्ञापनों का प्रसार बहुत अधिक बढ़ चला है। प्रसार के बढ़ने के साथ ही, इन विज्ञापनों का जनसामान्य पर प्रभाव भी बढ़ा है। विज्ञापन जनसामान्य तक पहुंचने के लिए भाषा का उपयोग करते हैं तथा दर्शकों का ध्यान खींचने के लिए इस भाषा के साथ कुछ अभिनव प्रयोग भी करते हैं। प्रस्तुत शोध पत्र डिजिटल युग में विज्ञापनों के इसी भाषिक अवदान पर केंद्रित है, जहाँ हम इन विज्ञापनों की भाषा में आने वाले प्रयोगों को संप्रेषण में नई विविधता लाने वाले उपक्रम के रूप में समझने का प्रयास करेंगे। प्रस्तुत शोध पत्र में हम विज्ञापनों की इस अभिनव भाषा की भूमिका भारतीय भाषाओं के बीच साहचर्य स्थापित करने में भी समझने का प्रयास करेंगे। आज के समय में जहां भाषा के आधार पर भारतीय समाज में विभेद लाने का प्रयास प्रारंभ हुआ है वहीं यह विज्ञापन किस प्रकार भारतीय भाषाओं और उनके भाषिक समाजों के बीच के अंतर को कम करने का कार्य कर रहे हैं, प्रस्तुत शोध पत्र में विभिन्न उदाहरणों के माध्यम से डिजिटल युग के विज्ञापनों की इस समयानुकूल भूमिका पर भी चर्चा की जाएगी।

बीज शब्द- भाषिक समाज, साहचर्य, संप्रेषण, वैविध्य, एकात्म, भाषा

प्रस्तावना- मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। मनुष्य की यही सामाजिकता उसे जनमाध्यमों के निकट ले आती है और अंततः जनमाध्यमों के निकट आना इस सामाजिक प्राणी का विज्ञापनों से परिचय व व्यवहार का कारण बनता है। विज्ञापन विभिन्न जन्मध्यमों के द्वारा नागरिकों तक पहुंचता है और उनको प्रभावित करता है, समाचार पत्र, रेडियो और टेलीविजन ऐसे ही प्रारंभिक युग के प्रभावशाली जनमाध्यम हैं। डिजिटल इंडिया के प्रसार के साथ, इंटरनेट या सोशल मीडिया के उपभोक्ताओं की संख्या भारत में उल्लेखनीय रूप से बढ़ी है, उपभोक्ताओं की संख्या में इस विस्तार के कतिपय प्रभाव हमें समाज में दिखाई पड़ते ही हैं, अब सोशल मीडिया भी एक प्रभावशाली जनमाध्यम है, विशेषकर युवाओं को

प्रभावित कर लेने की इसमें अद्भुत शक्ति परिलक्षित हुई है। इन सभी जन माध्यमों में विज्ञापन एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, समाज को प्रभावित कर लेने की विलक्षण शक्ति के कारण इन माध्यमों के विज्ञापनों का अध्ययन आवश्यक हो जाता है, अध्ययन के क्षेत्र में भी इसके कई आयाम देखे जा सकते हैं। इसी प्रकार विज्ञापनों की भाषा और समाज पर उसके विभिन्न प्रभावों का अध्ययन भी इसका एक प्रमुख आयाम है।

"विचारों की अभिव्यक्ति भाषा के द्वारा ही होती है। भाषा में अद्भुत प्रेरक शक्ति निहित है। किसी को समझाने, बुझाने, मनाने एवं अपने अनुकूल बनाने में भाषा रामबाण है। चुस्त-दरुस्त मनोरम भाषा के द्वारा किसी को भी अपनी मुट्ठी में किया जा सकता है। किसी वस्तु से परिचित कराना, उसके प्रति अभिरुचि जाग्रत करना, उसे अपनाने हेतु सुझाव देना यह सब भाषा की क्षमता पर निर्भर है। विज्ञापन की भाषा साहित्य से अलग एक ऐसी भाषा है जो उपभोक्ता की मानसिकता के अनुकूल होती है, उसे प्रभावित करने में सक्षम होती है। विज्ञापन में लिखित, वाचिक, मौखिक-लिखित भाषा का प्रयोग होता है। क्षेत्र विशेष के कारण भाषा का स्वरूप भी बदलता रहता है।"¹ भारत जैसे बहुभाषीय देश में भाषा के संदर्भ में विज्ञापनों की चर्चा सर्वथा समयोचित है। भाषाओं का प्रश्न आजकल कुछ गंभीर हो चला है, सहज बोलचाल में कहीं तो आजकल भाषाओं का बाजार गरम है, स्पष्ट ही है कि उद्योग से सीधे संबंधित विज्ञापनों पर इस गरम बाजार का असर तो पड़ना ही है। ऐसे समय में जहां भाषाओं को लेकर एक प्रकार की खींच तान की स्थिति बनी हुई है, वहां विज्ञापन जगत इस अचानक बन पड़े अवसर या आपदा में किस प्रकार का कार्य व्यवहार दिखाता है, इसकी चर्चा होनी ही चाहिए।

प्रस्तुत शोधपत्र में हमारा उद्देश्य भाषाओं के इसी वैविध्य में, विभिन्न भाषा भाषी वर्गों के बीच संतुलन स्थापित करने में विज्ञापनों की भूमिका पर चर्चा करना है। इस संबंध में हमारी चर्चा विज्ञापनों की संप्रेषणीयता और उसकी चुनौतियों पर भी प्रकाश डालने का प्रयास करेगी।

भाषिक विविधता आधारित विज्ञापन

विज्ञापनों का सीधा संबंध उद्योग से होता है तथा उद्योग का सीधा संबंध उसके ग्राहकों से होता है, ऐसे में ग्राहकों यानी कि नागरिकों के मध्य यदि कोई भी विषय विशेष चर्चा का बना हुआ है तो उद्योगों का ध्यान भी उस ओर जाता ही है। भारत में अभी जब कुछ समय पहले भाषा संबंधी विवाद उठा तो उद्योगों का या कहें कि विज्ञापनों का उस ओर झुकाव होना ही था। ऐसे में यह देखना बचा था कि विज्ञापन या उद्योग इस खींचतान में भाषाओं को लेकर किस प्रकार का रुख अपनाते हैं। भारत के अलग-अलग राज्यों की अलग-अलग भाषाओं के वर्चस्व संबंधी इस विवाद में विज्ञापनों का रुख काफी भी रोचक दिखाई दिया। इस संबंध में कैडबरी चॉकलेट का न्यू नेबर, नामक विज्ञापन चर्चाओं के केंद्र में रहा, इस विज्ञापन ने भाषा को किसी भी विभेद नहीं बल्कि संप्रेषण और समाज के बीच के एक सेतु के रूप में दिखाया।

यह विज्ञापन उत्तर भारत के हिंदी भाषी परिवेश में प्रारंभ होता है, जहां छत पर आस पड़ोस की महिलाएं, ठंड की दोपहर में सखियों की मंडली बना बैठी होती हैं, तभी वहां एक नई पड़ोसन का आना होता है, उनके साथ आई महिला उनका परिचय चेन्नई से आई मिसेज अय्यर के रूप में कराती है। यह विज्ञापन बनाने वाली एजेंसी क्रोम पिक्चर्स ने उत्तर भारत या कहें कि समूचे भारत की महिलाओं के सखी भाव का अत्यंत ही सुंदर चित्रण किया है। मिसेज अय्यर के चेन्नई से होने का पता चलते ही, मंडली में बैठी एक दूसरी औरत अपने किसी नातेदार का चेन्नई में होना बताने लगती है। मुझे लगता है कि यह जो व्यवहार है की किसी अपरिचित को भी किसी न किसी बहाने अपना बना लेने का कोई कारण ढूंढ लेना है, यही भारतीय सामाजिकता की आत्मा है और हमारी नारी शक्ति हर बार की तरह यहां भी सामाजिकता के मामले में पुरुषों से कुछ आगे है। खैर, उस महिला की बात पर बड़े ही संकोच में मिसेज अय्यर जवाब देती हैं,

"सॉरी, माई हिंदी, थोड़ा-थोड़ा..."

हिंदी का कम ज्ञान होने पर भी, 'थोड़ा-थोड़ा...' बोलना न सिर्फ उनके संकोच को, बल्कि कुछ संप्रेषण कर लेने के उनके आग्रह और प्रयास को भी दर्शाता है। बात आगे बढ़ती है, मंडली में बैठी कुछ महिलाएं मिसेज अय्यर को एक प्रकार से हम देख कर अपनी

एक चुलबुली सखी से गोआ के बारे में पूछने लगती हैं। तिसपर चुलबुली सखी उनका उत्तर देने को ही होती है कि उसका ध्यान मिसेज अय्यर के कुछ उदास-कुछ संकुचित चेहरे की तरफ जाता है। वह चुलबुली सखी अब अपनी कहानी कुछ टूटी-फूटी अंग्रेजी में बोलने लगती है तथा संप्रेषण को सहज बनाने के लिए भंगिमाएं भी बनाने लगती है, वह कहती है:-

"ऑन हॉलिडे, माय हसबैंड, रोमांसिंग..."

अन्य सखियां भी उस चुलबुली महिला को अंग्रेजी शब्द बताने में सहायता करने लगती हैं, उद्देश्य बस इतना सा ही की मिसेज अय्यर भी इस बतरस का हिस्सा बन सकें। अंत में वह चुलबुली महिला भी अपने हाथ में केडबरी डेरीमिल्क आगे बढ़ाते हुए मिसेज अय्यर से कहती है:-

"सारी हां, माय इंग्लिश थोड़ा-थोड़ा..."

यह दूसरी माफी, जैसे भाषिक वर्चस्व संबंधित सभी विवादों पर ताला लगा ने का कार्य करती है, यह माफी यह सिद्ध करती है कि मिसेज अय्यर की पहली माफी इसलिए नहीं थी कि वह एक हिंदी समाज में मिसफिट हैं, बल्कि उनकी माफी मात्र संप्रेषण न कर पाने के लिए थी, ठीक यही माफी उस चुलबुली महिला ने भी मिसेज अय्यर से संप्रेषण न कर पाने के लिए मांगी। इन दोनों के ही बीच फिर भी जो बचा रह गया वह है, "थोड़ा-थोड़ा", यह थोड़ा-थोड़ा सखियों की इस मंडली के लिए खूब खिलखिलाकर हंस लेने के लिए बहुत पर्याप्त था। यह थोड़ा-थोड़ा ही वह सेतु है, जो प्रत्येक भारतीय की आत्मा को एक दूसरे से जोड़कर रखता है। आखिर में मिसेज अय्यर कहती भी हैं,

"थोड़ा-थोड़ा, बट वेरी स्वीट"²

इस थोड़े से संप्रेषण को ही असल आवश्यकता बता देने वाला यह वेरी स्वीट, दर्शकों को राष्ट्रीय एकात्मता तक ले जाने का कार्य करता है, यह विज्ञापन भाषाओं के साहचर्य और संप्रेषण के उनके वास्तविक उद्देश्य पर विशेष बल देता है। मनोरंजन और दर्शकों को अपने उत्पाद के प्रति लुभा लेने के उद्देश्य से बने इस विज्ञापन से हम भारतीय भाषाओं के टकराव के किसी सैद्धांतिक उपाय की अपेक्षा तो नहीं कर सकते परंतु जनमाध्यमों पर

प्रसारित होने वाले एक कार्यक्रम के रूप में राष्ट्रीय अखंडता को पुष्ट करने वाले इस विज्ञापन की सराहना होनी ही चाहिए। इस प्रकार के विज्ञापन भाषा को मूलतः संप्रेषण का एक माध्यम बता कर, भाषाओं के बीच के और अंततः भारत के विभिन्न भाषिक समुदायों के बीच के अनावश्यक विवाद को समाप्त करने का कार्य करते हैं।

विज्ञापन न सिर्फ केवल भाषा की संप्रेषणीयता पर बल देते हैं, बल्कि भाषिक शुद्धता के अतिरिक्त शुद्धतावादी आग्रह से भी दर्शकों को मुक्त करते हैं। जनमाध्यमों जैसे सार्वजनिक संस्थान के माध्यम से भाषा में इस प्रकार का लचीलापन लाने के कुछ खतरे भी हो सकते हैं परंतु इससे विभिन्न भाषिक समुदायों का साहचर्य और संप्रेषण को एक नया आयाम मिलता ही है। विज्ञापन पारंपरिक भाषा से कुछ छूट लेकर, नए मुहावरे गढ़ने का कार्य करते हैं। उदाहरण के लिए हैप्पीडेंट चिंगम का विज्ञापन, एक नया शब्द "चम्किंगम"³ देता है जिसमें न सिर्फ हिंदी के चमक, अंग्रेजी के प्रत्यय आई. एन. जी., बल्कि कन्नड़ और तमिल की तरह शब्दों के पीछे 'म' व्यंजन लगाने का भी गुण दिखाई देता है। इस तरह से बना शब्द चम्किंगम, कुछ बहुत चमकदार होने के भाव को तो संप्रेषित करता ही है परंतु अंग्रेजी, हिंदी और दक्षिण भारत की भाषाओं को संप्रेषण के एक अद्भुत संगम पर लाकर भी खड़ा कर देता है। विज्ञापन भाषा से केवल इतनी ही छूट नहीं लेता वह संज्ञाओं को भी कुछ विकसित कुछ अंतर्भाषिक बनाने का कार्य करता है। उदाहरण के लिए, प्रसून जोशी जी द्वारा लिखित 'ठंडा मतलब कोका कोला' या पीयूष पांडेय द्वारा लिखित 'अच्छे दिन आने वाले हैं', दोनों ही विज्ञापनों ने ठंडा या अच्छे दिन जैसे शब्दों-पदों को विस्तारित कर दिया है। अब 'अच्छे दिन' मात्र हिंदी भाषा का कोई पद न बनकर, एक विशेष पहचान वाला शब्दबंध बन गया है। 'अच्छे दिन' से जो आशय राजनीतिक रूप से जागरूक नागरिक उत्तर भारत में समझेंगे ठीक वही मध्य भारत या पूर्वोत्तर भारत या कि दक्षिण भारत में भी समझेंगे। यह विशेष शक्ति केवल विज्ञापनों के पास ही है कि वह किसी एक भाषा के पद को पूरे देश के लिए विशेष बना दें। ऐसा करने से केवल एक भाषा ही समृद्ध नहीं होती बल्कि भारत भर की भाषाओं में संप्रेषण का एक नया वैविध्य उभर कर आता है।

विज्ञापन केवल भारतीय भाषाओं को ही नहीं जोड़ते बल्कि वह विभिन्न भाषा भाषी समाज को भी जोड़ने का कार्य करते हैं। विज्ञापन ऐसा तब करते हैं जब वह अपनी भाषा के माध्यम से कुछ सांस्कृतिक आदान-प्रदान करते हैं। उदाहरण के लिए एम.डी.एच. मसाले का एक विज्ञापन जहां वह पंजाबी बोलियां का अद्भुत प्रयोग करता है, बोलियां पंजाबी समाज में शादी विवाह आदि मांगलिक कार्यक्रमों का एक अनिवार्य अंग है। विज्ञापनों के भीतर इसके प्रयोग से अन्य भाषा भाषी समाज भी, इन बोलियां से परिचित होता है जिससे कि सामाजिक एकात्मता को बल मिलता है। इस विज्ञापन में, वैवाहिक कार्यक्रम में बोली बोलते हुए कहते हैं कि: -

"बारी बरसी खटन गया सी, खटन गयासी मसाला,
ओ भांगड़ा ता सजना, एम.डी.एच. चना का मसाला।"⁴

विज्ञापन इस प्रकार लोकसंस्कृति या लोक की बोलियां का भी प्रचार करने का महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। भाषा में लोक के आ जाने से उसकी संप्रेषणीयता का विस्तार हो जाता है, लोक शैली विज्ञापन की भाषा को न सिर्फ कुछ अधिक सरस बनाने का कार्य करती है बल्कि उत्पाद को समाज से अधिक जुड़ा हुआ भी बना देने का कार्य करती है। विज्ञापनों में इस प्रकार की भाषा के प्रयोग से न सिर्फ उत्पादक को लाभ होता है बल्कि भाषा भी इससे समृद्ध होती है। उदाहरण के लिए फेविकोल का एक प्रचलित विज्ञापन, जिसमें इस प्रकार की शब्द रचना है -

"बन गया वो शर्माइन का सोफा, हाय रे शर्माइन का सोफा..."

इसी विज्ञापन में आगे, "मिश्राइन का सोफा...", "कलेक्ट्राइन का सोफा..."⁵

यहाँ यह विज्ञापन महिलाओं के उपनाम के आगे "इन" प्रत्यय लगाने का जो भाषिक प्रयोग दिख रहा है वह उत्तर प्रदेश और बिहार के भोजपुरी तथा अवधी बोलने वाले क्षेत्रों में प्रचलित है परंतु इस विज्ञापन के माध्यम से बहुत ही सहज ढंग से यह पद्धति समूचे हिंदी भाषी क्षेत्र में अपनी पहुंच बना सकी। यह इस प्रकार के विज्ञापनों की विशेष उपलब्धि मानी जानी चाहिए कि उन्होंने न सिर्फ हिंदी भाषी समाज को दूसरी भाषाओं के समाज व

उसकी संस्कृति से जोड़ा बल्कि हिंदी भाषी समाज को भी आपस में और अधिक नजदीक लाने का कार्य किया।

इसी प्रकार एक दूसरे भाषा भाषी समाज से, हिंदी समाज को परिचित कराने और जोड़ने वाले विज्ञापनों में ब्रिटानिया गुड्डे बिस्किट का विज्ञापन भी उल्लेखनीय है। जिसमें रेल यात्रा के दौरान, एक बंगाली सहयात्री दूसरे सिख सहयात्री से पूछता है कि

"आप लोग चा खाबे?"

जिस पर सिख सहयात्री कुछ चुटकी लेने के अंदाज में कहता है,

"ओय बंगाली बाबू चाय पीते हैं खाते नहीं हैं।"

अंततः बंगाली सहयात्री अपने हाथ में बिस्किट उठा कर कहता है,

"चलो चाय खा कर दिखाएं..."⁶

यहाँ चाय और बिस्कुट का प्रयोजन तो यह विज्ञापन दिखा ही रहा है, पर जाने अनजाने में बांग्ला भाषी और हिंदी भाषी समाज के भीतर की दूरी को भी कम करने का कार्य भी कर रहा है। यहां एक जो सबसे उल्लेखनीय कार्य इस विज्ञापन के माध्यम से होता दिखाई पड़ रहा है वह है, भाषाओं के अंतर की सहिष्णुता का समाज के भीतर विकास करना। प्रस्तुत विज्ञापन में कितने सहज ढंग से एक हिंदी भाषी व्यक्ति, एक बांग्ला भाषा व्यक्ति की भाषा को ठीक करने की पेशकश करता है, कुछ चुटीले ढंग से बगैर इस खतरे के की ऐसा करने से बांग्ला भाषी व्यक्ति आहत हो सकता है। बांग्ला भाषा व्यक्ति भी उसके प्रतिवाद का एक और प्रतिवाद बिना किसी भाषिक द्वेष या खीझ के देता है। अभी वर्तमान में भारत के भीतर कुछ एक भाषाओं में तथा कुछ एक जगहों पर ही जो खींचतान देखने सुनने को मिल रही थी, उसको यह विज्ञापन कितना निर्मूल और अप्रासांगिक सिद्ध कर देता है। इस विज्ञापन को देखने के बाद यह कितना स्पष्ट हो जाता है की भारतीय नागरिक अपनी संस्कृति और भाषा को लेकर सजग तो हैं पर असहिष्णु या प्रतिक्रियावादी बिल्कुल भी नहीं।

विज्ञापनों की यह भाषा, भारतीय भाषाओं के साहचर्य को विकसित और मजबूत करने जैसा महत्वपूर्ण कार्य तो करती है परंतु विज्ञापनों की भाषा ऐसा करते हुए भाषिक

नियमों से कुछ अधिक छूट भी प्राप्त कर लेती है, ऐसे में विज्ञापनों की यह भाषा, साहित्यिक भाषा के समक्ष कुछ चुनौतियां भी सामने लेकर आती हैं। विज्ञापनों की भाषा अधिक लचीली होने के नाते व्याकरण आदि नियमों से परिमार्जित भाषा बनकर दर्शकों के सामने प्रस्तुत नहीं हो पाती परंतु जनमाध्यमों पर प्रकाशित होने वाली सामग्री के रूप में वह अपने दर्शकों का भाषिक संस्कार तो करती ही है। ऐसे में इस बात का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए कि विज्ञापनों में ऐसे किसी भी भाषिक प्रयोग को न प्रस्तुत किया जाए जिससे कि उनके दर्शकों की भाषा दूषित हो।

निष्कर्ष

आज के समय में जहां जनमाध्यमों की जन सामान्य तक पहुंच बहुत व्यापक हो चुकी है, ऐसे में जन सामान्य पर होने वाले इनके प्रभाव ध्यान खींचते हैं। इसके साथ ही औद्योगिकीय विकास के साथ विज्ञापनों की भी महत्ता बढ़ती हुई दिखाई पड़ रही है, जिससे इस डिजिटल युग में जनमाध्यमों पर प्रसारित होने वाले इन विज्ञापनों का भाषिक प्रभाव उल्लेखनीय बन पड़ा है। डिजिटल युग में इन विज्ञापनों की भाषा न सिर्फ संप्रेषण कला में नई विविधता जोड़ने का प्रयास कर रही है बल्कि अपने ललित प्रयोगों द्वारा भारतीय भाषाओं के बीच साहचर्य बढ़ाने का समयानुकूल कार्य भी कर रही है। भाषा में इस लचीलेपन के आ जाने से, साहित्यिक भाषा के समक्ष कुछ चुनौतियां भी देखने को मिली हैं परंतु भाषाओं के बीच साहचर्य बढ़ाने का जो महनीय कार्य डिजिटल युग के इन विज्ञापनों ने किया है वह भारतीय भाषाओं की खींचतान के इस आवश्यक समय में अपना ध्यान तथा प्रशंसा अधिक आकर्षित करती हैं। इस प्रकार के विज्ञापन अपनी भाषा के माध्यम से न सिर्फ हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के बीच का संबंध मजबूत करते हैं बल्कि हिंदी की भी उसकी अन्य बोलियां के साथ मैत्री में प्रगाढ़ता लाते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ

- 1) कुमारी, शिप्रा (2008), जनसंचार एवं पत्रकारिता, नई दिल्ली: ओमेगा पब्लिकेशन, पृष्ठ- 188
- 2) न्यू नेबर (2025), क्रोम पिक्चर्स,
<https://youtu.be/AN7zd9ARrAc?si=FbbyjouiQtr3CVri>
- 3) चम्किंगम (2025), हैप्पीडेंट इंडिया,
<https://youtu.be/c6az8K2Vado?si=CMbzVqxYszLKTeO->
- 4) बारी बरसी एड (2023), एम डी एच स्पाइसेज ऑफिसियल,
<https://youtu.be/zvB2HwkNOnU?si=4EMV6GLjqtmgW6wA>
- 5) 1959 ए लव स्टोरी (2019), फेविकोल पेडिलाइट,
<https://youtu.be/1oo1cEUI9o?si=0ag4rVJ5n3S2-atg>
- 6) बंगोली बाबू (2025), ब्रिटानिया गुड डे,
<https://youtu.be/sAkUgUCKgyw?feature=shared>

- शिवम सिंह

शोधार्थी दिल्ली ,हिंदी विभाग ,विश्वविद्यालय
BC 82, वेस्ट शालीमार बाग, नई दिल्ली, 110088
9415663597, shiv12sangh@gmail.com